खण्ड २

(१) भगवान महावीर : पूर्वभवों का वर्णन
(२) भगवान महावीरकालीन परिस्थितियां
(३) महावीर का जन्म- महोत्सव, बचपन, विवाह व संकल्प
(४) दीक्षा- कल्याणक

भगवान महावीर : पूर्वभवों का वर्णन

महावीर की पृष्ठभूमि

हमने पिछले पृष्ठों के माध्यम से जैनधर्म की प्राचीनता तथा तीर्थंकरों के बारे में महत्त्वपूर्ण ज्ञान अर्जित किया है। तीर्थंकरों के सम्बन्ध में श्री आचारांगसूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने कहा है-

"जितने भी तीर्थंकर पहले हुए हैं, वर्तमान में हैं, भविष्य में होंगे उन सबका उपदेश एक ही है वह है अहिंसा। किसी भी जीव का हनन मत करो। किसी भी जीव को बंधक मत बनाओ। सभी को प्राण प्रिय हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता है।"

भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन श्वेताम्बर मान्यताओं के आचारांग आदि आगमों में प्राप्त नहीं होता। केवल समवायांग में प्रभु महावीर के एक भव का वर्णन है, उन्होंने सम्यक् दर्शन की[1] उपलब्धि जिस भव में प्राप्त की, इसका सर्वप्रथम वर्णन आवश्यकनिर्युक्ति में मिलता है।

तीर्थंकरों के समवसरण व धर्मोपदेश के विषय में श्री औपपातिकसूत्र में बताया गया है- "सभी तीर्थंकर जीव-अजीव की व्याख्या करते हैं।"

"संसार में यह जीव अनंत काल से विभिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है, मरता है, पुनः फिर जन्म लेता है- संसार में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, कोई गति नहीं, कोई योनि नहीं, जहां इस जीव को भटकना न पड़ा हो। जन्म, जरा, मृत्यु से ग्रसित इस संसार के जीव को जन्म-मरण के चक्र से बचने के लिए संयम-साधना करनी पड़ती है। अरिहंत, सिद्ध, साधु व धर्म की शरण में जाना पड़ता है।"

उत्तराध्ययनसूत्र में जिन दुर्लभ वस्तुओं का वर्णन है उसमें प्रथम मनुष्य-भव है। मनुष्य के जन्म की प्राप्ति देवताओं से बढ़कर है। मनुष्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप की आराधना कर जन्म, जरा, व्याधि से मुक्त होकर परमात्मा बन सकता है।

तीर्थंकर को पूर्वजन्मों में बहुत साधना करनी पड़ती है। सभी तीर्थंकरों के पूर्वभवों का वर्णन जैन ग्रंथों में उपलब्ध है। यहां पहले भव का अर्थ पहला जन्म नहीं। प्रथम भव का अर्थ वह जन्म है, जब तीर्थंकर जीवन की यात्रा प्रारंभ होती है। इन्हीं जन्मों के बीच जब आत्मा अनेक बार नीच गति में चली जाती है उस जन्म को इसमें नहीं गिना जाता। इन सूचियों में मानव, देव, पशु के जन्मों का ही वर्णन किया जाता है। तीर्थंकर का जीव जरूरी नहीं कि स्वर्ग से आए। वह नरक भोगकर भी तीर्थंकर रूप में जन्म ले सकता है। तीर्थंकर परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी आत्मा या सृष्टि। यह क्रम चलता रहता है। यहां कुछ घटता है, तो कुछ बढ़ता है, कुछ समाप्त होता है। तीनों को उप्पेइ वा, विगेइ वा धुवेइ वा कहा है। इसी दृष्टि से हम जैनधर्म को प्राचीनतम धर्म कहते हैं क्योंकि इसका कोई संस्थापक नहीं है।

इसी क्रम में भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन जैन ग्रंथ आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, हरिभद्र वृत्ति, मलयगिरि वृत्ति, चउवन्न महापुरिसचरियं, महावीरचरियं, विशेषावश्यक भाष्य, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओं में उपलब्ध है।

दिगम्बर परम्परा में पूर्वभवों का वर्णन उत्तरपुराण में आया है। श्वेताम्बर परम्परा में २७ भवों का

वर्णन है और दिगम्बर परम्परा में ३३ भवों का। अब इन भवों का विवेचन हम करेंगे, ताकि हमें पता लग सके कि भगवान महावीर को तीर्थंकर गोत्र बांधने के लिए कितने जन्मों की यात्रा करनी पड़ी। श्रमण भगवान महावीर की महानता को प्रकट करने में ये भव हमारी साधना के लिए शिक्षा प्रदान करते हैं। तीर्थंकर महावीर को महावीर बनने से पहले जिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, उन सबका वर्णन है।

श्वेताम्बर परम्परा में भी भवों की संख्या का अंतर ही नहीं अपितु नाम, स्थल और आयु संबंधी दोनों परम्पराओं का अंतर है। पर पुनः हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं कि इन जन्मों के बीच अंतिम सत्ताईसवें व गर्भ-परिवर्तन को आचार्यों ने भव नहीं माना। क्योंकि यह घटना इन्द्र के आदेश से हुई। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह भी अच्छेरा (आश्चर्य) था। समवायांगसूत्र की वृत्ति आचार्य अभयदेवसूरि ने छब्बीसवां भव देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से जन्म ग्रहण करने का बताया है। सत्ताईसवां भव त्रिशला रानी के गर्भ में आने का वर्णन, आचार्य अभयदेव के अतिरिक्त किसी भी ग्रंथ में गर्भ-परिवर्तन को भव नहीं माना है।

अब हम पाठकों के समक्ष प्रभु महावीर के उन जन्मों का वर्णन करते हैं, जिनमें उन्होंने विशिष्ट साधना की। नरक के दुख भोगे, स्वर्ग के सुख भोगे। मनुष्य गति व पशु गतियों का भ्रमण किया। विभिन्न प्रकार के कर्मफल भोगे। जैसे पहले कहा जा चुका है कि जैन तीर्थंकर किसी भी वैदिक परम्परा की तरह देवी-देवता का अवतार नहीं होते। वे तो सामान्य पुरुष होते हैं। अपने शुभ कर्मों से तीर्थंकरत्व को प्राप्त कर जन्म-मरण की यात्रा समाप्त करते हैं। जब तक जीते हैं साकार परमात्मा का रूप अरिहंत कहलाते हैं। निर्वाण के बाद वही निराकार सिद्ध परमात्मा बनते हैं। वे राग-द्वेष से मुक्त, रत्नत्रयी के स्वामी होते हैं। भगवान महावीर की कथा बड़ी रोचक रही है। यह कथा प्राचीन मान्यताओं का सुन्दर समन्वय है। यह कथा जन्म, जरा, मृत्यु में फंसे प्राणियों को उबारने के लिए, उनको प्रेरणा देने के लिए और महावीरत्व से पहले उन्हें कितने कितने जन्मों तक भटकना पड़ा, उसकी सजीव गाथा है। महावीर के पूर्व भवों का वर्णन इस प्रकार है-

प्रथम-नयसार का भव

संसार के भव-चक्र में प्राणी अनंत काल से थपेड़े खा रहा है। इस भव-चक्र को जैन परिभाषा में कर्मबंधन कहते हैं। कर्म की परिभाषा जैनधर्म की अपनी है। कर्म को मात्र कार्य नहीं माना गया है, न ही भाग्य। जैनधर्म में कर्मवाद का स्वतन्त्र सिद्धांत है। इस कर्म के फल से न तीर्थंकर बच सकता है न मनुष्य। जैन सिद्धान्त कहते हैं कि शक्ति-सम्पन्न ईश्वर राग-द्वेष से मुक्त है। वह संसार के किसी चक्र में नहीं पड़ता। संख्या की दृष्टि से ईश्वर एक नहीं। जितनी आत्माएं हैं सभी में ईश्वर समाया हुआ है। हर आत्मा परमात्मा बनती है, अर्हत् बनती है, केवली बनती है, जिन बनती है, सर्वज्ञ पुरुषोत्तम त्रिलोकीनाथ बनती है, संसार द्वारा पूजित बनती है। पर कर्म के अनुसार, उसे जन्म-मरण, शुभ-अशुभ गति में घूमना होता है। **भगवान महावीर का जीव प्रथम भव में** नयसार नामक प्राणी था। आपका जन्म महाविदेह क्षेत्र के महावप्रविजय के अंतर्गत जयन्ती नगरी में पुरप्रतिष्ठान ग्राम में हुआ। वहां का राजा शत्रुमर्दन था।

भगवान महावीर के जीव ने सबसे पहले इसी जन्म में सम्यक् दर्शन प्राप्त किया था।[३] नयसार

ग्राम चिंतक था। ग्राम का मुखिया होते हुए भी वह बड़ा सरल, विनम्र और हंसमुख स्वभाव का था। वह लोगों में बहुत ही प्रिय था। वहां का सम्राट् उसकी सरलता व ईमानदारी से बहुत प्रभावित था।

एक समय की बात है राजा ने अपने लिए एक भव्य राजप्रासाद बनाना शुरु किया। इसके लिए राजा को काफी मात्रा में इमारती लकड़ी की जरूरत थी। सम्राट् ने इस कार्य के लिए नयसार को चुना। नयसार लकड़ी के कार्य का विशेषज्ञ था। नयसार अनेक कर्मचारियों व गाड़ियों को लेकर जंगल में गया। उसने देवदार, साल आदि के वृक्षों को कटवाना शुरू किया। उसमें से वह अच्छी लकड़ी अपने कारीगरों से कटवाता जोकि राजप्रासाद के निर्माण के काम आ सके।

नयसार का जंगल भव्य था। उसने कार्य के लिए हजारों स्थानीय मजदूरों को ठेके पर रखा। हर दोपहर को मजदूर अपने घर से लाया खाना खाते। खाना खाकर पुनः काम पर लग जाते। नयसार भी मजदूरों के साथ ही खाना खाता। यह क्रम हर रोज चलता था, पर एक दिन ऐसा भी आया कि उसके जीवन में दिव्य घटना घटी, जो भविष्य में उसे तीर्थंकर की यात्रा की ओर ले गई।

सुपात्रदान

एक दिन की बात है कि धूप बहुत थी। मजदूर काम करते-करते थक चुके थे। नयसार ने सबको भोजन करके आराम करने की सलाह दी। वह स्वयं भी भोजन करने के लिए बैठ गया। नौकरों ने उसके सामने भोजन रखा। भोजन को देखते ही नयसार चिंतन करने लगा- ''इतनी धूप है, जंगल है। ऐसे में जैसे मुझे भूख लगी है, कितने प्राणी भूखे होंगे। कोई अतिथि अगर इस समय आ जाए, तो मैं उसे भोजन कराकर ही भोजन करूं।'' आत्मा के जब शुभ परिणाम होते हैं तो सब मंगलमय होता है। आत्मा के परिणामों से शुभ-अशुभ कर्म का बंधन होता है। नयसार अपने स्थान से उठा। ऊंचे पहाड़ पर खड़ा हुआ तलहटी की ओर उसने नजर दौड़ाई। उसने देखा कि बहुत दूर कुछ मुनि रास्ता भटके हुए इधर आ रहे हैं। वह उन मुनियों की ओर भागा। भयंकर गर्मी में मनुष्य को देखकर थके-हारे मुनियों को प्रसन्नता हुई।

नयसार ने मुनियों को नमस्कार किया। थके-मांदे मुनियों से नयसार ने पूछा- ''भगवन्! आप इस तपती दोपहरी में इस जंगल में कैसे पधारे?''

मुनियों ने कहा- ''भद्र! हमने सार्थवाह (काफले) के साथ प्रस्थान किया था। सार्थ ने एक स्थान पर विश्राम किया। उसी समय हम पास के ग्राम में भिक्षा के लिए निकले। पुनः अपने स्थान पर आए, तो सार्थ समूह पहले ही निकल चुका था। हम भी चले पर आगे आकर रास्ता भूल गए।'' नयसार ने मुनियों की बात को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सुना। उसने मुनियों को कहा- ''भगवन्! चिंता की कोई बात नहीं। आप मेरे से पहले शुद्ध आहार ग्रहण कीजिए, विश्राम कीजिए। मैं आपको जहां भी कहो, वहीं छोड़ आऊंगा। मेरे यहां मीठी छाछ व खाना तैयार है, पहले उसे ग्रहण करो।'' जैन मुनि तो भिक्षा के ४२ दोष टालकर भिक्षा ग्रहण करता है। वह पात्र (दानी) व भोजन दोनों की शुद्ध परख कर भोजन ग्रहण करता है। इसीलिए जैन साधु के भोजन को गोचरी कहा गया है-''जैसे गाय घास के मैदान में घास को खाती है पर घास का कोई नुकसान नहीं होता। साधु भी इसी तरह दाता से भिक्षा ग्रहण करता है। इसे मधुकरी भी कहते हैं। जिस प्रकार भंवरा फूल-फूल के कण से शहद इकट्ठा करता है, साधु भी हर घर से घूमकर थोड़ा-थोड़ा भोजन ग्रहण करता है। वह अपने लिए खरीदा, बनाया, सामने बनाया भोजन ग्रहण नहीं

करता है। यह भोजन चाहे कितना ही शुद्ध हो, ऐसा भोजन निर्दोष नहीं माना जाता है।

नयसार ने मुनियों की ओर देखा। मुनियों ने नयसार द्वारा प्रदत्त भोजन की ओर। शुद्ध आहार था। लेने वाला सुपात्र था। मुनियों ने भोजन ग्रहण किया। भोजन खाने के बाद वह मुनि-मण्डली चलने को तैयार हुई। नयसार को मुनियों से इस तरह लगाव हो गया कि वह भावुक हो उठा। उसकी आंखें विनम्रता और सरलता के कारण भर आईं। सचमुच सरल हृदय में धर्म ठहरता है। बनावटी व कपटी लोगों के पास धर्म का क्या काम? उनके पास धर्म नहीं, दम्भ ठहरता है। दम्भ मिथ्यात्व का दूसरा रूप है।

मुनियों ने नयसार से कहा-"भद्र! तू रोता क्यों है? तू तो भाग्यशाली है। तूने सुपात्रदान दिया है जो बड़े भाग्य से उपलब्ध होता है। तूने हमारी खूब सेवा की है। हमें रास्ता बताया है। हमारा भी कर्त्तव्य है कि तुम्हें धर्मोपदेश दें। तुम्हें कुछ मार्ग बताएं।"

नयसार ने निवेदन किया-"हां महाराज! मुझ गरीब पर आपने इतने उपकार किए। इस जंगल में तो पशु-पक्षी के अतिरिक्त मनुष्य कहां आता है? आप पधारे। मेरा भोजन पवित्र किया। अब मुझको धर्मोपदेश देने की कृपा करें।"

मुनियों ने उसे धर्म का रहस्य बताते हुए कहा- "सरलता और शान्ति धर्म का बीज है। देव, गुरु और धर्म की भक्ति करो। मिथ्यात्व को छोड़ो। सम्यक्त्व को ग्रहण करो। तुम्हारा जीवन सफल होगा।"

नयसार ने मुनि के उपदेश से सरलता से धर्मतत्त्व को ग्रहण किया पर अभी तो यह शुरूआत थी। असली जीवन संग्राम की शुरूआत। तथागत बुद्ध ने अपने एक जन्म में दीपंकर बुद्ध को रास्ता दिखाया था। ऐसा वर्णन जातक अट्ठ कथा में आया है।

दिगम्बर परम्परा

आचार्य गुणभद्र रचित उत्तरपुराण (७४-१५) में इस कथा का वर्णन इस प्रकार से आया है-

"जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के मधुवन में पुरूरवा नाम का भीलों का सरदार रहता था। वह सभी कुव्यसनों का आदी था।"

एक बार वह जंगल में अपनी पत्नी के साथ शिकार को गया। दोपहर तक उसे कोई जीव नहीं मिला। दोपहर के समय उसने पत्तों में कुछ आवाज सुनी। उसने सोचा- 'कोई मृग पत्तों के पीछे छिपा बैठा है?' पर ज्यों ही उसने तीर बांधने की तैयारी की तो सामने सागरसेन नाम के मुनि के दर्शन हुए। पत्नी ने पति को समझाते हुए कहा- "ये हमारे वन के देवता है इन्हें मत मारो।"

पत्नी की बात सुनकर भील शांत हो गया। वह मुनि के पास आया। आकर मुनि को प्रणाम किया। मुनि महाराज के उपदेश से प्रभावित हो उसने मधु, मांस व मदिरा का त्याग कर दिया। इन व्रतों का पालन उसने मरते दम तक किया। यही पुरूरवा भविष्य में प्रभु महावीर के रूप में प्रकट हुआ।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में ग्रामचिन्तक कहा है तो दिगंबर ग्रंथों में भीलों का मुखिया कहा है। गुणचंद्र और हेमचंद्र ने ग्रामचिंतक को विशिष्ट आचार का पालन करने वाला, धर्मशास्त्र में श्रद्धालु, हेय और उपादेय का ज्ञाता, स्वभाव से गम्भीर, प्रकृति से सरल, विनीत, परोपकारपरायण आदि विशेषण देकर उसके सद्गुणों प्रकट किया है, पर दिगंबर परम्परा में पुरुरवा के वर्णन में उसमें दुर्गुणों को प्रधानता बताई है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति होने पर भी पात्र की प्रकृति में बहुत अंतर है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही